88.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ७ : नवम्बर १९८२

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA 700001

Gram: PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक ७

नवम्बर १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था १९७

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २०२

शब्दाखेट २०८

धातुमय जैन प्रतिमाएँ २१०

अर्द्ध कथानक २१६

संस्कृत का एक पद्यबद्ध सत्रहवीं

शताब्दी का कोश सिद्ध शब्दार्णव २२२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २२३

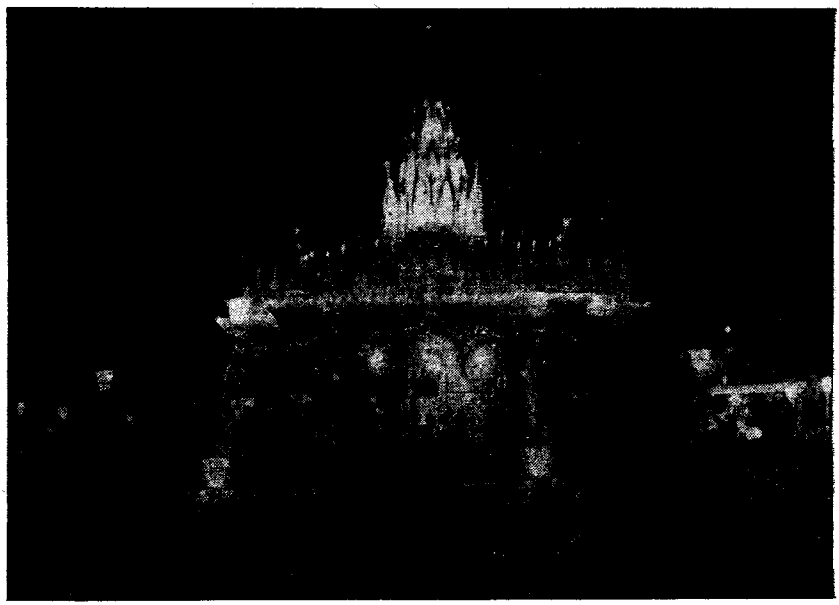

शीतलनाथ स्वामी का मन्दिर, कलकत्ता
कार्तिक महोत्सव के अवसर पर

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

धन सम्पति और परिजन सम्बन्धी

सिंह जैसे
मृगशावक को पकड़ ले जाता है
अन्त समय में
मृत्यु भी उसी प्रकार
मनुष्य को पकड़ ले जाती है,
माता-पिता-भाई-बन्धु
कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होता ।

तुम स्वयं अनाथ हो
अनाथ होकर तुम
दूसरों की रक्षा कैसे करोगे ?

जो सोचता है
धन-सम्पत्ति-परिजन
उसकी रक्षा करेगी
वह सम्पत्ति की रक्षा करे,
यह उसकी भूल है
कारण वे उसकी रक्षा
करने में समर्थ नहीं है ।

धन न इस लोक में रक्षा कर सकता है
न परलोक में,
सहसा जिसका दीप निर्वापित हो गया है
उसकी भाँति
सन्मार्ग से अवगत होकर भी
वह ऐश्वर्य के लिए सत्पथ नहीं देख पाता ।

स्त्री-पुत्र-बन्धु-बान्धव
जीवन काल में ही उस पर
निर्भर रहते हैं,
मृत्यु के बाद उसका अनुसरण नहीं करते।

इस जगत् में
उनके लिए वह
पापाचरण भी कर सकता है
किन्तु फल भोग के समय
कोई उसका सहायक नहीं होता।

दुःख भोग का
आत्मीय-बन्धु-पुत्र-कलत्र
कोई हिस्सा नहीं बँटा सकता,
वह उसे अकेले ही भोगना पड़ता है।
जो कर्म करता है
कर्मफल उसी का अनुसरण करता है।

जो जिस प्रकार का कर्म
इस जगत में करता है
उसे वे व्यक्तिगत भाव से ही
भोगने पड़ते हैं,
बिना भोगे
कोई उसका अतिक्रम नहीं कर सकता।

दुर्लभ सम्बन्धी

संसार में चार वस्तु दुर्लभ
और कल्याण कर है—
मनुष्य जन्म, धर्म श्रवण,
धर्म श्रद्धा और धर्म उद्यम।

मनुष्य देह प्राप्त करने पर भी
सद्धर्म श्रवण दुर्लभ है,

जो श्रवण करता है
वह तप निरत क्षमाशील
और अहिंसा परायण होता है।

यदि सौभाग्यवशतः
धर्म श्रवण भी करे
तो उस पर श्रद्धा होना दुर्लभ है,
कारण संसार में अनेक ऐसे हैं
जिन्होंने श्रवण किया
किन्तु श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई।

यदि धर्म श्रवण और
धर्म में श्रद्धा भी हो
तो धर्म में उद्यम होना दुर्लभ है,
कारण संसार में अनेक ऐसे हैं
जिन्हें धर्म श्रद्धा हुई है
किन्तु उसके लिए उद्यम नहीं करते।

अतः तुम
सद्धर्म श्रवण,
धर्म श्रद्धा और धर्म उद्यम
प्राप्त कर
संयत बनो और
कर्ममल आत्मा से
दूर करो।

पूज्य सम्बन्धी

जो उच्चाकांक्षी है
भविष्य लाभ की आशा से
वह कण्टक यन्त्रणा सहन करता है,
किन्तु जो भविष्य लाभ की आशा न कर
दुर्वाक्य रूप कण्टक यन्त्रणा सहन करता है,
वही पूज्य है।

दुर्वाक्य कान में प्रवेश कर
मन में वैर भाव उद्भव करता है,
धर्म भावना से जो
उसे सहन कर संयत रहता है,
वही पूज्य है।

जो परोक्ष निन्दा नहीं करता,
प्रत्यक्ष कटु शब्द प्रयोग नहीं करता,
जो निश्चित वाक्य नहीं बोलता
या जो क्षतिकर है उसका उच्चारण,
वही पूज्य है।

जो अलोलुप अकौतुहली
और माया रहित है,
अपिशुण और अदीनवृत्ति है,
जो न अन्य की प्रशंसा करता है
न स्वयं की प्रशंसा करवाने की
कामना करता है,
वही पूज्य है।

यद्यपि प्रचुर परिमाण में
खाद्य-वस्त्र संग्रह करने में
जो समर्थ है
फिर भी प्रयोजन के अनुसार ही
वह सामान्य संग्रह करता है
और सन्तोष को श्रेष्ठ धर्म मानकर
उसी में सन्तुष्ट रहता है,
वही पूज्य है।

जिसमें यह सभी गुण हैं वह पूज्य है
जिसमें नहीं है वह पूज्य नहीं,
अतः पापों का परिहार कर
इन गुणों को धारण करो।

आत्मा से आत्मा को जानो,
प्रिय अप्रिय में
समभाव रखो,
पूज्य बनो ।

जो समस्त प्राणियों को
आत्मवत् समझता है,
समभाव से देखता है,
कर्म प्रवाह को निरुद्धकर
सतत् संयत रहता है,
वह पाप नहीं करता ।

[क्रमशः

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

तृतीय सर्ग

तभी प्रभु ने सामन्तादि राजपुरुष और भरत बाहुबली आदि पुत्रों को बुलवाया और भरत को कहा—"तातः, अब तुम राज्य का संरक्षण करो। मैं तो अब संयम रूप साम्राज्य को ग्रहण करूँगा"

स्वामी की बात सुनकर भरत नीचा माथा किए कुछ क्षण चुपचाप खड़े रहे। फिर करबद्ध होकर गद्‌गद् कण्ठ से बोले—"पिताजी, आपके चरणकमलों में बैठकर मुझे जो आनन्द मिलता है वह आनन्द सिंहासन पर बैठने से नहीं मिलेगा। आपके चरण-कमलों की छाया में मैं जिस आनन्द की अनुभूति करता हूँ उस आनन्द की अनुभूति राज छत्र की छाया में नहीं हो सकती। यदि मुझे आपका वियोग दुःख सहन करना पड़ा तो ऐसी राज्यलक्ष्मी से क्या लाभ? आपकी सेवा के सुख रूपी क्षीर समुद्र के सम्मुख राज्य सुख तो एक विन्दु जल की भाँति है।"

प्रभु बोले—"मैं राज्य का परित्याग कर रहा हूँ। ऐसी स्थिति में पृथ्वी पर यदि राजा नहीं रहा तो सर्वत्र मत्स्य प्रवृत्ति फैल जाएगी। अतः तातः, भली-भाँति इस पृथ्वी का पालन करो। तुम मेरी आज्ञा पालक हो, तुम्हें मेरा यही आदेश है।"

प्रभु की आज्ञा को उल्लंघन करने में असमर्थ भरत ने राज्य ग्रहण किया। कहा भी गया है—गुरुजनों के प्रति विनय व्यवहार अर्थात् गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना ही छोटों का कर्त्तव्य है।

तब नम्र भरत ने उन्नत वंश की भाँति पिता के सिंहासन को अलंकृत किया। प्रभु के आदेश से सामन्त सेनापति आदि भरत के राज्यारोहण उत्सव को उसी प्रकार प्रतिपालित किया जिस प्रकार इन्द्रादि देवताओं ने भगवान के राज्यारोहण के समय किया था। उसी समय प्रभु के शासन की तरह भरत के मस्तक पर पूर्णिमा के चन्द्रतुल्य अखण्ड छत्र सुशोभित हुआ। उसके दोनों ओर चँवर डुलने लगे। वे भरत-क्षेत्र के उत्तर-दक्षिण दोनों ओर से आए

लक्ष्मी के दूत से लगे। वे वस्त्र और अलंकारों से इस प्रकार शोभित होने लगे मानों वे उनके उज्ज्वल गुण हैं। महामहिम उन नवीन राजा को नवीन चन्द्रमा की भाँति समस्त राजमण्डल ने अपनी कल्याण कामना से प्रणाम किया।

प्रभु ने बाहुबली आदि पुत्रों में भी उनकी योग्यतानुसार राज्य बाँट दिया। फिर उन्होंने कल्पवृक्ष की भाँति लोक को इच्छानुरूप वार्षिक दान देना प्रारम्भ किया। नगर के चौराहों एवं द्वारों के निकट ढोल बजाकर यह घोषित कर दिया गया जिसको जिस चीज की आवश्यकता है वह प्रभु से आकर ले जाए। जब प्रभु ने दान देना प्रारम्भ किया तब कुबेर ने जृम्भक आदि देवताओं को आदेश दिया कि वे प्रभु के निकट धन उपस्थित करें। वे लोग उस धन रत्न स्वर्ण रौप्य आदि को लाकर प्रभु के कोष में जमा करने लगे जो चिरकाल से नष्ट हो गया था, खो गया था, मर्यादालंघनकारी था या अन्याय द्वारा प्राप्त किया गया था या श्मशान में, पहाड़ों में, उद्यानों एवं घर की जमीनों में गाड़ कर छिपाया हुआ था या जिसका कोई अधिकारी नहीं था। देवताओं ने उसी प्रकार प्रभु का कोष पूर्ण किया जैसे वर्षा का जल कुँए आदि जलाशयों को पूर्ण करता है। भगवान सूर्योदय से दान देना प्रारम्भ करते वह मध्याह्न के भोजन के पूर्व तक चलता। वे प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सुवर्ण मुद्रा की कीमत के लगभग दान करते थे। इस प्रकार एक वर्ष में उन्होंने तीन सौ अठासी करोड़ अस्सी लाख सुवर्ण मुद्रा की कीमत का धन दान दिया। भगवान दीक्षा ले रहे हैं सुनकर कई लोगों के मन में भी वैराग्य भाव जागृत हुआ। इसलिए वे कम दान ग्रहण करते थे। यद्यपि भगवान इच्छानुरूप दान देते थे फिर भी वे अधिक नहीं लेते थे।

वार्षिक दान शेष होने पर इन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। वे भी द्वितीय भरत की तरह उनके निकट आए। अन्य इन्द्र भी हाथ में जल-कलश लेकर उनके साथ हो गए। उन्होंने राज्याभिषेक की भाँति दीक्षा महोत्सव सम्बन्धी अभिषेक किया। वस्त्रालंकार विभाग के अधिकारी की भाँति इन्द्र वस्त्रालंकार लाए। प्रभु ने उन्हें धारण किया। इन्द्र ने प्रभु के लिए सुदर्शन नामक शिविका तैयार करवायी। वह देखने में अनुत्तर विमान नामक देवलोक-सी थी। इन्द्र के हाथों का सहारा लेकर प्रभु ने उस शिविका पर आरोहण किया। लगा जैसे उन्होंने लोकाग्ररूपी मन्दिर की अर्थात् मोक्ष की प्रथम सीढ़ी पर पदार्पण किया। पहले रोमांचित मनुष्यों ने, पीछे देवताओं ने पुण्यभार की भाँति उस शिविका को उठाया। उस समय आनन्द के कारण मंगल वाद्य बजाए जाने लगे। उसके शब्द ने पुष्करावर्त्तक मेघ की भाँति

दसों दिशाओं को आच्छादित कर लिया। मानों इहलोक और परलोक की निर्मलता मूर्त्तिमंत हो गयी है ऐसे दोनों चँवर भगवान के दोनों ओर डुलने लगे। वृन्दारक जाति के देव चारण की भाँति मनुष्य कर्ण को सुख देने वाली प्रभु की जय ध्वनि उच्च शब्द से करने लगे।

शिविका में उपविष्ट प्रभु उत्तम देवताओं के विमान में रखी शाश्वत प्रतिमा की भाँति सुशोभित होने लगे। इन्हें जाते देख बालक वृद्ध सकल नगरवासी उनके पीछे इस प्रकार दौड़ने लगे जैसे पिता के पीछे बालक दौड़ता है। कोई-कोई मेघ दर्शन को उत्सुक मयूर की भाँति दूर से उन्हें देखने के लिए वृक्षों की ऊँची डालों पर जाकर बैठ गए। कोई-कोई राह के मन्दिर एवं अट्टालिकाओं की छत पर चढ़ गए। ऊपर से पड़ती हुई तीव्र धूप को उन्होंने चन्द्र की चाँदनी की तरह समझ लिया। किसी का घोड़ा नहीं आने के कारण देर हो जाने के भय से स्वयं ही घोड़े की तरह भागने लगा। कोई जल की मछली की तरह लोक समूह में प्रवेश कर प्रभु को देखने की इच्छा से लोगों के बगल से गुजरते हुए आगे बढ़ने लगा। जगत्पति के पीछे जो स्त्रियाँ दौड़ रही थीं दौड़ने के कारण उनके मुक्ताहार टूट गए। देखकर लगा मानों के अंजलि में खोई लेकर प्रभु का स्वागत कर रही है। प्रभु आ रहे हैं सुनकर कुछ स्त्रियाँ लड़कों को गोद में लेकर स्थिरता से खड़ी थीं। वे बानर सहित लता-सी लगती थीं। स्तन भार से मन्दगति से चलने वाली युवतियाँ अपने दोनों ओर स्त्रियों के गले में हाथ डालकर चल रही थीं, मानो उन्होंने दो डैने उत्पन्न कर लिए है। कुछ स्त्रियाँ प्रभु को देखने के उत्साह की गति को भंग करने वाले अपने नितम्बों की निन्दा कर रही थीं। राह के दोनों ओर घर की कुल वधुएँ कुसुम्बी वस्त्र परिधान कर पूर्ण पात्र हाथ में लिए खड़ी थीं। वे चन्द्रमा सह सन्ध्या की सहोदरा भगिनियों-सी प्रतीत होती थीं। कुछ रमणियाँ प्रभु को देखने के लिए उत्सुक बनी साड़ी के आँचल को हाथ से चँवर की तरह डुला रही थीं। कुछ स्त्रियाँ प्रभु पर खोई बरसा रही थीं, मानों निर्भर योग्य पुण्य बीज-वपन कर रही हों। कुछ सौभाग्यवतियाँ 'चिरंजीवी होओ, चिरंजीवी होओ, चिर आनन्द लाभ करो' ऐसा आशीर्वाद दे रही थीं। कुछ चपलनयना नगर-नारियाँ स्थिर नयना होकर द्रुत व धीर गति से प्रभु के पीछे-पीछे जा रही थीं।

उस समय चार निकाय के देवतागण विमानों के द्वारा पृथ्वी को छायान्वित कर आकाश में उपस्थित होने लगे। कुछ देवता मदजल वर्षण कारी हस्ती पृष्ठ पर आ रहे थे। देखकर लगा जैसे वे आकाश को मेघमय कर

रहे हैं। आकाश रूप समुद्र में नौका रूप अश्व पर आरोहण कर डाँड़ रूपी चाबुक से उन्हें संचालित कर कुछ देवता प्रभु को देखने आ रहे थे। कुछ देवता मानों मूर्त्तिमान पवन हों इस प्रकार के रथ पर चढ़कर नाभिनन्दन को देखने आए। लगता था रथ के गति-वेग पर उन्होंने बाजी लगायी है इसलिए वे मित्रों को भी पथ नहीं देते थे। स्वग्राम को पहुँचे पथिक की भाँति प्रभु के निकट आकर "यही स्वामी है, यही स्वामी हैं" कहते कहते उन्होंने वाहनों की गतिरोध किया। विमान रूपी अट्टालिका, हाथी, घोड़ा और रथों के कारण ऐसा लगता था मानों अनेक देवता और मनुष्यों से परिवृत जगत्पति अनेक सूर्य और चन्द्रों से परिवृत मानुषोत्तर पर्वत है। उनके दोनों ओर खड़े होकर भरत और बाहुबली उनकी सेवा करते हुए ऐसे शोभित होते थे जैसे दोनों तटों के मध्य समुद्र शोभित होता है। हाथी जिस प्रकार यूथपति का अनुसरण करता है उसी प्रकार अन्य अट्ठानवें विनीत पुत्र उनका अनुसरण कर रहे थे। माँ मरुदेवी, पत्नी सुनन्दा और सुमंगला, ब्राह्मी व सुन्दरी कन्याएँ एवं अन्य स्त्रियाँ निहार बिन्दुयुक्त कमलिनी की भाँति अश्रुपूर्ण नेत्रों से पीछे-पीछे जा रहीं थीं। इस प्रकार प्रभु सिद्धार्थ नामक उद्यान में आ उपस्थित हुए। वह उद्यान प्रभु के पूर्व-जन्म के सर्वार्थ-सिद्ध विमान-सा लग रहा था। वहाँ प्रभु शिविका रत्न से अशोक वृक्ष के नीचे इस प्रकार उतरे जैसे ममता रहित मनुष्य संसार से उतर जाता है अर्थात् संसार को छोड़ देता है। उस समय इन्द्र ने निकट आकर चन्द्र की किरणों से ही निर्मित हो ऐसा देवदुष्य वस्त्र उनके कन्धों पर रखा।

उस दिन चैत्र कृष्णा अष्टमी थी। चन्द्र उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में अवस्थित था। दिन का अन्तिम भाग था। जय-जय शब्द के कोलाहल से असंख्य देवता और मनुष्य स्व हर्ष को प्रकट कर रहे थे। भगवान के सम्मुखस्थ चार दिशाओं को प्रसाद देने की इच्छा से जैसे उन्होंने चार मुष्टि से मस्तक के केशों का लुंचन किया। उन केशों को सौधर्मेन्द्र ने अपने उत्तरीय में झेल लिया। उस समय ऐसा लगा मानो वे अपने उत्तरीय को अन्य प्रकार के धागे से बुनना चाहते थे। प्रभु ने जब अवशिष्ट केशों को पंचम मुष्टि से लुंचन करना चाहा तब इन्द्र ने निवेदन किया, "प्रभु, इन केशों को रहने दें कारण हवा से उड़कर जब ये आपके सुवर्ण कान्तिमय स्कन्धों पर गिरते हैं तब मरकतमणि की भाँति शोभित होते हैं।" इन्द्र की विनती स्वीकार कर प्रभु ने उन केशों को रहने दिया। कारण भक्तों की एकनिष्ठ साधना को प्रभु कभी परित्याग नहीं करते।

सौधर्मेन्द्र तब उन केशों को क्षीर समुद्र में डाल आए। फिर उन्होंने सूत्रधार की भाँति हाथ के इशारे से वाद्य-वादन बन्द करने को कहा। उसदिन प्रभु का षष्ठ तप अर्थात् दो दिन का उपवास था। उन्होंने देवता मनुष्य एवं असुरों के सम्मुख सिद्ध भगवान को नमस्कार कर "मैं सावद्य योग अर्थात् जिन कार्यों में हिंसा की संभावना है उनका परित्याग करता हूँ" ऐसा कहकर मोक्ष मार्ग के रथ तुल्य चारित्र को ग्रहण कर लिया। शत् ताप से तप्त व्यक्ति को वेष की छाया में जैसे सामान्य समय के लिए सुख होता है उसी प्रकार नारकी जीवों को भी क्षणमात्र के लिए सुख की अनुभूति हुई। उसी समय दीक्षा हो गयी यह संकेत पाते ही प्रभु को मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। कच्छ और महाकच्छ आदि चार हजार राजाओं ने भी प्रभु के साथ ही दीक्षा ग्रहण कर ली। मित्रों ने उन्हें निषेध किया, बन्धुओं ने मना किया, भरतेश्वर ने उन्हें बार-बार निवृत होने को कहा फिर भी वे स्त्री-पुरुष राज्यादि का तृणवत परित्याग कर प्रभु की कृपा स्मरण कर भ्रमर की भाँति प्रभु के चरण-कमलों के विरह को असह्य समझ कर जो पथ स्वामी का है वही पथ हमारा पथ यह निश्चय कर आनन्द के साथ चारित्र ग्रहण किये। ठीक ही तो कहा गया है भृत्यों का यही क्रम होता है अर्थात् सभी अवस्थाओं में वे प्रभु का अनुसरण करते हैं।

फिर इन्द्र करबद्ध होकर प्रभु की स्तुति करने लगे—'हे प्रभो, हमलोग आपके यथार्थ गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हैं फिर भी आपकी स्तुति करते हैं, कारण आपके प्रभाव से हमारी बुद्धि का विकास होता है। हे स्वामी, त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा का परित्याग करने के कारण अभयदान रूपी दान-शाला-से आपको हम नमस्कार करते हैं। मिथ्या का परित्याग करने के कारण निर्मल और हितकारी सत्य और प्रिय वचन रूप सुधापूर्ण समुद्र-से आपको हम नमस्कार करते हैं। अदत्तादान त्याग रूपी मार्ग बन्द हो गया था इस पथ में प्रथम पदक्षेप कर उस पथ को पुनः प्रवर्त्तित करने के कारण हे प्रभु, हम आपको नमस्कार करते हैं। कामदेव रूपी अन्धकार को नाश करने वाले अखण्डित ब्रह्मचर्य रूपी महान तेजपुंज सूर्य-से आपको हम नमस्कार करते हैं। तृणवत् धरती और सम्पद आदि सर्व प्रकार के परिग्रहों का एक साथ परित्याग करने वाले निर्लोभ आत्मसम्पन्न हे प्रभो, आपको हम नमस्कार करते हैं। पंच महाव्रत रूप भार वहनकारी वृषभ तुल्य और संसार रूप समुद्र को अतिक्रम करने में कच्छप समान आपको हम नमस्कार करते हैं। पाँच महाव्रतों की सहोदरा भगिनी की भाँति पाँच समितियों को धारणकारी हे प्रभो, हम आपको

नमस्कार करते हैं। आत्म भाव में लीन बाह्य प्रवृत्ति का विरोध करने वाले और समस्त प्रवृत्तियों से पृथक शरीर सम्पन्न तीन गुप्तिओं को धारण करने वाले हे प्रभो, हम आपको नमस्कार करते हैं."

इस प्रकार स्तुतिकर जन्माभिषेक के समय जिस प्रकार देवगण नन्दीश्वर द्वीप गए थे उसी प्रकार नन्दीश्वर द्वीप जाकर सब अपने-अपने स्थान को लौट गए।

पारने के दिन प्रभु आहार भिक्षा के लिए निकले किन्तु कहीं आहार प्राप्त नहीं हुआ। कारण उस समय लोग भिक्षादान क्या है जानते ही नहीं थे, फिर वे एकान्त सरल थे। भिक्षा के लिए आगत प्रभु को पूर्व की ही भाँति राजा मानकर कोई सूर्य के उच्चश्रवा अश्व से भी वेगगामी अश्व उपहार में देने लगा। कोई शौर्य में दिग्गजों को भी परास्त करने वाला हाथी देने लगा। कोई रूप-लावण्य में अप्सरा को भी लज्जित करने वाली कन्या देने लगा तो कोई विद्युत्प्रभ अलंकारादि उनके सम्मुख ला रखा। किसी ने सन्ध्याकालीन आकाश में विस्तृत विभिन्न रंगों वाला रंगीन वस्त्र देना चाहा तो कोई मन्दार माला को भी तिरस्कार करने वाली पुष्पमाल्य अर्पण किया। कोई सुमेरु पर्वत के शिखर की भाँति स्वर्णदान करने लगा तो कोई रोहणाचल की चूड़ा की तरह रत्न-राशि प्रभु के सम्मुख रखने लगा। किन्तु, प्रभु ने उनमें से एक भी वस्तु ग्रहण नहीं की। भिक्षा नहीं मिलने पर भी प्रभु अदीन मन से जंगमतीर्थ की भाँति प्रव्रजन कर पृथ्वी को पवित्र करने लगे। उन्होंने क्षुधा, पिपासा, परिषह को इस प्रकार सहन कर लिया जैसे उनका शरीर सप्तधातु द्वारा निर्मित नहीं था। जहाज जिस प्रकार पवन का अनुसरण करता है उसी प्रकार स्वयं-दीक्षित राजागण भी प्रभु के साथ विहार करने लगे।

[क्रमशः

शब्दाखेट

श्री सुमन्त भद्र

शब्द-बैसाखियों के सहारे
सदैव बने रहोगे पंगु—
ये विकल्पी संसाधन छोड़ो,
भावों की ओर दिशा मोड़ो,
पीपल के फड़फड़ाते पत्ते
छत नहीं बन सकते
किसी मकान की।
नहीं ढोया जा सकता
महासागर
बुलबुल की चोंच में।
तुम्हें कान उमेठ कर
चुप कराने पड़ेंगे
शब्द,
तोड़ देनी होंगी बैसाखियाँ,
तब कहीं सुन पाओगे
स्वावलम्बन की साखियाँ।
नहीं उलझेंगे तुम्हारे प्राण
तब विचारों के विवर्त में,
बाहर नहीं शोधोगे
यात्रा के प्रमाण,
उपस्थ है जागृति
शब्दों की मौत के पीछे,

मुखरित है असंगता
विकल्पों के मौन में।
क्या तुम बैसाखियों के मेले में
मोल लोगे इतना बड़ा संत्रास,
देह की इतनी अमानुष भूख
और मज्जा को पिघला देनेवाली
मरुस्थली प्यास ?
कुछ नहीं बिगड़ा अभी,
केवल देर हो गयी,
पाओं ने अपनी निर्भरता
सौंप दी बैसाखियों को।
लुट गया मौन
शब्दों की चाल पर,
चिपक गये द्वन्द्व
उतर गये छन्द। बन्ध

धातुमय जैन प्रतिमाएँ

श्री भँवरलाल नाहटा

[पूर्वानुवृत्ति]

आकोटा की प्रतिमाएँ

आकोटा (गुजरात) से प्राप्त धातु प्रतिमाएँ बड़ोदा संग्रहालय में प्रदर्शित हैं जिनका परिचय दिया जा रहा है :

१ **ऋषभदेव**—यह कांस्य प्रतिमा खड्गासन मुद्रा में अत्यन्त सुन्दर, ७६ से० मी० ऊँची और कलापूर्ण है। एक हाथ इसकी सर्वथा और आंशिक रूप में अन्यत्र भी जर्जरित-क्षतिग्रस्त हो गई है। पाद पीठ तो सर्वथा लुप्त है। पर इसके नीचे तक अधोवस्त्र—धोती धारण किया हुआ है। इस गुप्तकालीन कंबु-ग्रीव और क्षीण कटि प्रदेश वाली प्रतिमा के नेत्र रजत मंडित और अधर ताम्रवर्णी है। स्कंध प्रदेश पर लटकती केशराशि वाली इस आजानुबाहु प्रतिमा को उत्तर भारत की सुन्दरतम प्रतिमा कहा जा सकता है। यह प्रतिमा पाँचवीं शती की है।

२ **जीवन्त स्वामी**—यह प्रतिमा कुछ क्षतिग्रस्त हो जाने पर भी अत्यन्त सुन्दर है। मस्तक पर मुकुट और उसके पीछे चौरस टोपी जैसा परिधान है जिस पर गोल वातायन अलंकृति युक्त है। ललाट के ऊपरी भाग में मस्तक के केश मुकुट के नीचे दिखाई देते हैं और स्कंध प्रदेश पर बालों की कुण्डलित लटें तीन भागों में बिखरी हुई हैं। भगवान महावीर के अर्द्ध निमीलित नेत्र, नासाग्र दृष्टि कायोत्सर्ग ध्यान की उच्चतम अवस्था को उजागर करती है। भगवान के ललाट पर गोल टीकी दी हुई है। प्रभु के भुजबंद स्कंध प्रदेश के नीचे पहनाये हुए हैं जिनके मुकुट की गवाक्ष शैली मणिमालावत् परिलक्षित होती है। कम्बुग्रीव प्रभु के गले का हार पर्याप्त विशाल है और हाथों में वलय पहने हुए हैं। कटिमेखला से कसी हुई धोती नीचे तक आयी हुई है। धोती के सुघड़ सल स्पष्ट हैं और मध्यभाग में अलंकृत पर्यसत्क बंधा हुआ है। धोती की चुन्नटें वल्ली जैसी लगने लगी हैं। यह प्रतिमा पूर्व गुप्तकाल की कला का उत्कृष्ट नमूना है।

३ **जीवन्त स्वामी**—यह प्रतिमा भी भगवान महावीर के जीवनकाल में बनी प्रतिमाओं के अनुधावन में बनी जानेवाली प्राचीन और कलापूर्ण

गुप्तकालीन प्रतिमा है। जीवन्तस्वामी की इस प्रतिमा के दोनों हाथ खण्डित हैं।

४ **जीवन्त स्वामी**—यह प्रतिमा एक अभिलेख युक्त ऊंचे पाद पीठ पर खड्गासन ध्यानावस्थित है। इसके आसन पर खुदे लेख से यह विदित होता है कि चन्द्रकुल की नागीश्वरी श्राविका का यह देव निमित्त दान है। इसकी लिपि ई० स० ५५०के आसपास की है। इस प्रतिमा के माथे पर मुकुट,कान में कुण्डल, बाँयें हाथ में ऊंचे भुजबंद व कलाई पर वलय है। दाहिना हाथ सर्वथा लुप्त है, कटिमेखला धोती के ऊपर धारण की हुई है। मुखमण्डल के पृष्ठ भाग में सूचाकृति किनारीदार प्रभामण्डल बना हुआ है। इसका मुकुट त्रिकूट है और पहले वाली प्रतिमाओं की भाँति ऊपरी भाग में चौरस टोपी जैसा आकार नहीं है। धोती की कांग मध्य में गोमूत्रिकाकृति वाली है।

५ **ऋषभदेव प्रतिमा**—यह प्रतिमा कायोत्सर्ग—खड्गासन मुद्रा में अवस्थित है। इस २५ से० मी० ऊंची प्रतिमा के नीचे ३३×६ से० मी० परिमाण का पादपीठ है जिसके उभय पक्ष में निकली हुई नाल युक्त कमल पर दाहिनी ओर यक्ष एवं पार्श्व में अम्बिका देवी विराजमान हैं। देवी के बाँयें गोडे पर बालक बैठा हुआ है। इस अलंकृत आसन के मध्य में उलटे हुए कमल का गोल आसन है। जिस पर धर्मचक्र के उभय पक्ष में बैठे सुन्दर मृग प्रभु के मुखमण्डल को निहार रहे हैं। प्रतिमा के आकार और रिक्त स्थान में छिद्रों के देखने से प्रतीत होता है कि यह अवश्य ही चतुर्विंशति जिन पट्टक रहा होगा जिसका तेईस प्रतिमाओं से युक्त परिकर बिछुड़ कर अलग हो गया है। इस पर निवृत्ति कुल के जिनभद्र वाचनाचार्य के नाम का अभिलेख है। प्रस्तुत लेख की लिपि देखते डा० श्री उमाकान्त शाह ने इसे सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर जैन विद्वान जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण का और सन् ५५० के लगभग का बताया है।

भगवान आदिनाथ के बारीक धोती पहनी हुई दिखायी है जिस पर सुन्दर डिजाइन बना हुआ है। आदिनाथ की प्रतिमा में सवस्त्र होते हुए भी नग्नत्व—पुरुष चिह्न स्पष्ट परिलक्षित होता है, यह आश्चर्यजनक है। यह प्रतिमा बड़ौदा संग्रहालय में है।

६ **अम्बिका देवी**—यह प्रतिमा छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध की लेटे हुए सिंह पर ललितासन में विराजमान अंबिका देवी की है। देवी के दाहिने गोडे पर बालक बैठा है और दाहिनी ओर भी एक बालक खड़ा है। अलंकृत पीठ पर देवी और उसके पार्श्ववर्ती स्तम्भ कमल-पुष्पाकृति युक्त है। और उसके बगल

में ग्रह बने हुए है। स्तम्भों में अलंकृत पट्टी के सहारे देवी विराजमान है और ऊपरी भाग में प्रभामण्डल कमल पंखुड़ियों से युक्त है। चारों ओर बेल पत्तियों का बोर्डर है। इसके ऊपरी भाग में ध्यानस्थ जिन प्रतिमा बनी हुई है। देवी के विशाल ललाट पर मुकुट पर्याप्त ऊँचा और किरीट युक्त है। कानों में कुण्डल, गले में एकावली हार, चन्द्रकला हार व घंटिका—घुंघरू हार, मंगल माला पहनी हुई है। हाथों में भुजबन्द सुशोभित है। इस प्रतिमा के पृष्ठ भाग में क्षतिग्रस्त अभिलेख उत्कीर्णित है। देवी की साड़ी बारीदार है। मुखाकृति तेजस्विता पूर्ण है। यह प्रतिमा भी बड़ोदा संग्रहालय में प्रदर्शित है।

७ **पार्श्वनाथ त्रितीर्थी**—यह कांस्यप्रतिमा आकोटा से प्राप्त अखण्ड सुन्दर और बड़ोदा संग्रहालय में विद्यमान ६८ प्रतिमाओं में से एक है। इसकी कला शैली में परिकर निर्माण का परिष्कृत रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पिण्डवाड़ा की प्रतिमा शैली से इसकी तुलना की जा सकती है। सप्तफण मण्डित पार्श्वनाथ भगवान की भव्य प्रतिमा के उभय पक्ष में जो दो कायोत्सर्गिए ध्यानस्थ खड़े है, उनके फूलदार धोती पहनी हुई है। उनके बगल में नीचे आसन पर दो चामरधारिणी अवस्थित है। तीनों जिन प्रतिमाओं के मस्तक पर छत्र सुशोभित है। ऊपरी भाग में एक देव ढोलक लिए बैठा है और प्रभु के छत्रों के पीछे वृक्ष के पत्ते दिखाई देते है। प्रभु के नीचे अलंकृत पद्मासन और उलटे कमलासन के नीचे वस्त्रासन लटक रहा है। जिसके नीचे हरिण युगल युक्त धर्म चक्र है। सिंहासन के नीचे दो सिंह परिलक्षित है। इसके उभयपक्ष में वाहिनी और यक्ष व वाम पार्श्व में अम्बिकादेवी विराजमान है। इनके आगे नौ ग्रहों की मूर्तियाँ स्पष्ट है। मध्यवर्ती वाहिने कोने में चैत्यवंदन मुद्रा में भक्त श्रावक बैठा दिखलाया है। प्रतिमा कलापूर्ण व सुन्दर है।

८ **चतुर्विंशति पट्ट**-यह कांस्यमय चौबीसी भी बड़ोदा संग्रहालय में प्रदर्शित है। मध्यवर्ती ऋषभदेव भगवान कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थित है। अवशिष्ट तेइस तीर्थंकर पद्मासन मुद्रा में विराजित है। ऋषभदेव प्रतिमा के नीचे कमलासन और तन्निम्न भाग में धर्मचक्र-मृग युगल और उभय पक्ष में नौ ग्रह बने हुए है। बगल में उभय पक्ष से निर्गत शाखा की भाँति कमल नाल पर वाम पार्श्व में अम्बिका देवी विराजमान है।

९ **चामरधारिणी**—यह कांस्यमूर्ति अत्यन्त सुन्दर लचकदार देहयष्टि युक्त है। इसके केशविन्यास और तदुपरि बंधी हुई लड़ियाँ व ऊपरवर्ती जूड़े के चतुर्दिक अलंकार धारण किया हुआ है। इसके गले में हार व पुष्ट पयोधरों

के मध्य लटकती हुई मंगलमाला नाभि से दाहिनी ओर स्थित है। हाथों में भुजबंद पहने हुए हैं। दाहिने हाथ में उत्तरीय वस्त्र का अंचल पकड़ा हुआ है और सीधा किया हुआ है। दाहिना हाथ मोड़ कर ऊपर किया हुआ है जिसमें दण्डधारण क्रिया हुआ लगता है। संभव है कि यह चामर की डांडी हो। दृढ़ शृंखलायुक्त कंदोरा और तन्निम्न भाग में कटिमेखला—कटिपट्ट परिधापित है। यह पश्चिम भारत की श्रेष्ठ कलाकृति है और बड़ोदा संग्रहालय में स्थित है।

आकोटा के ६८ प्रतिमा समूह में अवशिष्ट प्रतिमाओं में ३० अभिलेख हैं। जिनमें से दो में संवतोल्लेख है। इनमें लगभग आधी प्रतिमाएं सातवीं शताब्दी से पूर्व की है। दो कांस्य प्रतिमाओं के मस्तक बड़े ही सौम्य और कलापूर्ण हैं, ये अवश्य ही गुप्तकालीन प्रतिमाओं के खण्डित भाग हैं।

वल्लभी (वला) की प्रतिमाएं—गुजरात का वल्लभी नगर जैन धर्म का मुख्य केन्द्र रहा है, जहाँ आर्य नागार्जुन की अध्यक्षता में प्रथम वाचना हुई। आर्य मल्लवादी ने वि० सं० ४१४ के लगभग बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। वि० सं० ५१० में फिर श्री देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व में जैन श्रमणों की परिषद का द्वितीय सम्मेलन हुआ जिसमें जैनागमों को पुस्तकारूढ़ किया गया। इस समय गुजरात में जैनधर्म सर्वत्र फैल चुका था। भण्डारकर साहब ने वल्लभी से पाँच खड्गासन मुद्रा की प्रतिमाएं प्राप्त कीं, जो इस समय प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में है। इनके खण्डित अभिलेखों से प्रमाणित हुआ है कि ये छठी शताब्दी में निर्मित हुई थीं।

इन पाँचों प्रतिमाओं में चार पादपीठ पर स्थित हैं जिनमें तीन का ऊंचा और एक प्रतिमा का पादपीठ नीचा है और एक प्रतिमा का पादपीठ सर्वथा लुप्त हो गया है। ये सभी प्रतिमाएं गुप्तकाल की भाँति प्रलम्बन होकर पश्चिम भारत की तत्कालीन शैली के अनुरूप हैं। एक प्रतिमा का दाहिना हाथ खण्डित है जो पादपीठ पर मणिमाला के गोल घेरे में अवस्थित है। एक प्रतिमा के उभय पक्ष में पादपीठ से लेकर मुखमण्डल के पीछे बने प्रभामण्डल तक धनुषाकार पट्टिका बनी हुई है। सभी के मस्तक पर घुंघराले बाल और लम्बे कान दृष्टिगोचर होते हैं। सभी प्रतिमा धोती पहनी हुई है और गोमूत्रिका लहर की चुन्नटदार लाँग नीचे लटक रही है।

महुड़ी की प्रतिमाएँ

महुड़ी गाँव, गुजरात में खुदाई से प्राप्त प्रतिमाएँ धातुमय इकतीर्थी हैं। वे इस प्रकार हैं :

१ जिन प्रतिमा के सिंहासन में दो सिंह और मध्य में धर्मचक्र है। उभय पक्ष में हरिण है। प्रभु के पृष्ठ भाग में दो स्तंभ पर तोरण व प्रभामण्डल है।

२ जिन प्रतिमा के पृष्ठ भाग में चौखट पर प्रभामण्डल है। निम्न भाग में पद्मासन के नीचे सपग्रह की खड़ी मूर्त्तियाँ दोनों ओर निकली हुई है। शाखा पर यक्ष यक्षिणी बैठे हुए है।

३ ऋषभदेव प्रतिमा के कन्धे पर कुन्तल राशि और पद्मासन के नीचे वस्त्र व दाहिनी ओर यक्षराज के अतिरिक्त कुछ अवशेष नहीं है। प्रभु के पृष्ठ भाग में कुछ नहीं है।

४ पार्श्वनाथ प्रतिमा—ऊंचे पाये के सिंहासन पर नौ यह है, तदुपरि कुण्डली मारे सांप पर प्रभु प्रतिमा के उभय पक्ष में धरणेन्द्र पद्मावती है। प्रभु की मनोज्ञ प्रतिमा पर सुन्दर सप्तफण सुशोभित है।

पिण्डवाड़ा की प्रतिमाएँ

पिण्डवाड़ा, सिरोही रोड की प्रतिमाएँ यहाँ के मन्दिर में विराजमान है।

१ खड्गासन जिन प्रतिमा—यह खड़ी प्रतिमा कमलासन पर स्थित है। प्रभु को पहिनाया कंदोरा और धोती खूब स्पष्ट एवं कलापूर्ण है। इस पर सं० ७७४ का पाँच पंक्ति का संस्कृत अभिलेख उत्कीर्णित है।

२ पार्श्वनाथ त्रितीर्थी—यह प्रतिमा भी अत्यन्त सुन्दर पद्मासन स्थित सप्त फण मण्डित है। दोनों ओर के कक्ष में स्थित कायोत्सर्ग मुद्रा की खड़ी प्रतिमाएँ भी कलापूर्ण उपर्युक्त प्रतिमाओं की भाँति धोती पहिने हुए है। भगवान पार्श्वनाथ के पद्मासन के नीचे कमल की पंखुड़ियाँ और वस्त्र चिह्न है। तन्निम्न भाग में धर्मचक्र व उभय पक्ष में मृग युगल है। दोनों ओर सिंहासन के नीचे सिंह उत्कीर्णित है। सिंहासन के दाहिनी ओर यक्ष है जिसका वाहन गज है और बायें हाथ में फल धारण किया हुआ है। वाम पार्श्व में सिंह वाहिनी अम्बिका देवी दाहिने हाथ में आम्रलुम्ब व बायें हाथ में बालक धारण किए अवस्थित है। यक्ष-यक्षिणी के पृष्ठ भाग में उभय पक्ष में चामर-धारिणी स्त्रियाँ खड़ी है और निम्न भाग में नवग्रह प्रतिमाएँ बनी हुई है। यह अत्यन्त सुन्दर कलाकृति भी आठवीं शताब्दी की है।

वांकानेर की पार्श्वनाथ प्रतिमा

पिण्डवाड़ा की उपर्युक्त प्रतिमा से मिलती-जुलती पार्श्वनाथ प्रतिमा सौराष्ट्र के वांकानेर में है। एक शैली होने पर भी शिल्पी भिन्न होने से

सामान्य अन्तर होना स्वाभाविक है। यह प्रतिमा भी आठवीं-नवीं शताब्दी की है और निम्न भाग में बने हुए पायों पर अवस्थित है।

गिरनार तीर्थ

विमलनाथ परिकर—यह परिकर खूब विशाल और कलापूर्ण है। इसके ऊपर काउसग्गिए और परिकर के निम्न भाग में सं० १५२३ का लेख भी उत्कीर्णित है। यह पहली टूंक के चतुर्विंग् देहरियों के पास एक कमरे में रखा हुआ है। इसमें षण्मुख यक्ष और विजया शासन देवी की भी सुन्दर प्रतिमा बनी हुई है। मूल प्रतिमा भग्न हो जाने से यह परिकर उपेक्षित पड़ा हुआ है।

साराभाई का संग्रह

इनके यहाँ एक पार्श्वनाथ प्रतिमा है जो कि सुन्दर और सप्त फण मण्डित है। इसमें भी उभय पक्ष में खड़ी हुई कायोत्सर्ग मुद्रा की प्रतिमाएं हैं। निम्न भाग में चामर-धारिणी व उभय पक्ष में यक्ष-यक्षिणी अवस्थित हैं। नीचे नवग्रह बने हुए हैं व इसके धनुषाकृति पाये के मध्य में धर्मचक्र है। प्रतिमा के पृष्ठ भाग में दशवीं शताब्दी का एक लेख उत्कीर्णित है जिसमें चंद्र कुल, माढ गच्छ के गोचि श्रावक के द्वारा मुक्ति की इच्छा से जिनेश्वर त्रितीर्थी बनाने का उल्लेख है।

गौड़ी पार्श्वनाथ, बम्बई

१ गोड़ीजी के मन्दिर की पार्श्वनाथ त्रितीर्थी भी सप्त फण मण्डित है और उसी शैली में निर्मित है जो तीन शताब्दियों से चलती आ रही है। इसके नवग्रह कुछ विशेष स्पष्ट हैं और सामने चारों पाये परिलक्षित हैं। पृष्ठ भाग में प्रतोली आकार वाले पाये पर सं० १०६३ का लेख उत्कीर्णित है। पिण्डवाड़ा की प्रतिमा शैली से कुछ भिन्नता और शिल्प में परिवर्त्तन व रेखाओं के उत्कीर्णन में कुछ न्यूनता लगती है।

२ आदिनाथ प्रतिमा—यह प्रतिमा प्रभास पाटण से आई हुई इकतीर्थी है। इसमें उभय पक्ष में चामरधारिणी मूर्त्तियाँ खड़ी हैं और दाहिनी ओर यक्ष व बाँयें तरफ अम्बिका की प्रतिमा है। भगवान के पीछे प्रभामण्डल, छत्रादि न होने से लगता है कि परिकर भाग नष्ट हो गया है। इसके पृष्ठ भाग में सं० १०६० का लेख उत्कीर्णित है। प्रभु के मस्तक पर पृष्ठ भाग में गर्दन तक लटकती केश राशि अन्य प्रतिमाओं से पृथकता ला देती है।

[क्रमशः

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[पूर्वानुवृत्ति]

चार मास की गर्मी के पश्चात् मौसम कुछ ठीक हुआ। उस समय भानचन्द और रामचन्द नामक दो जैन साधु जौनपुर आए। वे श्वेताम्बर खरतरगच्छीय आचार्य अभयधर्म सूरि के शिष्य थे। उनमें भानचन्द ज्ञानी और बुद्धिमान थे। रामचन्द उस समय बालक था। अतः गृहस्थ-से वस्त्रादि पहनता था। उनके सम्प्रदाय के अनुयायीगण उनके दर्शन करने जाते। मैं भी उन्हीं का अनुसरण कर उपाश्रय में जहाँ वे अवस्थित थे दर्शन करने पहुँचा। भानचन्द से मेरी घनिष्ठता हो गयी और मैं समस्त दिन वहीं बिताने लगा। रात्रि में भी घर लौटने में मुझे देर होने लगी। मैं जैनधर्म के मूलग्रन्थ उनसे पढ़ने लगा। मैंने बहुत-से ग्रन्थ पढ़े। विभिन्न तीर्थंकरों के स्तोत्रादि पढ़े। धार्मिक विषयों में लिखित सुपरिचित गाथाएँ पढ़ी, स्नात्र पूजा कैसे की जाती है उसकी विधि विषयक पुस्तक पढ़ी। सामायिक प्रतिक्रमण, ध्यान किस प्रकार करना चाहिए पढ़ा। इसके अलावा कोश और अलंकार ग्रन्थ भी पढ़ा। एक और जो ग्रन्थ पढ़ा वह सुपरिचित श्रुतबोध था। छन्दकोश भी पढ़ा। मैं मेधावी छात्र था। जो कुछ पढ़ता उसे कण्ठस्थ और यथायथ भाव से आवृत्ति करने में बहुत समय व्यय करता। मैं तथाकथित भाव से धार्मिक बन गया और सत् जैनों के आठ गुण अधिगत करने की चेष्टा करने लगा।

मैंने लिखना प्रारम्भ किया और संस्कृत व्याकरण के एक गुरुत्वपूर्ण विषय में 'पंच-सन्धि' नामक पुस्तक लिखने में व्यस्त हो गया। किन्तु तब भी मेरा जीवन दोहरा था। यद्यपि ज्ञानार्जन के लिए मैंने अपना समस्त समय बिताया फिर भी अपने प्रेम का व्यसन परिपूर्ण रूप से नहीं त्याग सका था। मैंने एक हजार पद की एक पुस्तक लिखी। जिसका विषय था प्रेम। वास्तव में वह पुस्तक नौ रसों की अभिव्यक्ति मूलक थी। आज पीछे देखकर बोल सकता हूँ मैं मिथ्यात्व का कवि था और उस पुस्तक का लेखक था जो था मिथ्यात्वपूर्ण।

इस प्रकार ज्ञान और प्रेम की साधना में नियुक्त होकर मैंने अर्थोपार्जन

के लिए कुछ नहीं किया। सत्य तो यह था कि बहुत बार मैं खाना भी भूल जाता। अर्थ उपार्जन-से सामान्य विषय पर चिन्तन करने का उस समय मेरे पास समय ही कहाँ था!

माता-पिता की भर्त्सना सहन करते हुए भी मैंने इसी भाँति दो वर्ष व्यतीत किए। सम्वत् १९५९ के पूर्व ही मैं अपने दोनों व्यसन प्रेम और पुस्तक से मुक्त हो गया। तब मैं अपनी पत्नी को उसके पितृगृह से लाने के लिए रवाना हुआ। बढ़िया कपड़े एवं नौकर चाकरों से परिवृत होकर सानन्द पालकी में बैठकर खेराबाद पहुँचा।

उस समय मेरी उम्र पन्द्रह वर्ष की थी। वहाँ एक मास व्यतीत भी नहीं हुआ कि मैं वात विकार जनित एक कुत्सित रोग से आक्रान्त हो गया। मेरी समस्त देह का चर्म कुष्ठ रोगों के घावों से भर गया। हाड़ मरमर करने लगे, बाल गिरने लगे। हाथ-पाव में असंख्य घाव हो गए। देखने में इतना कुरूप हो गया था कि लोग मुझसे दूर रहने लगे। मेरे श्वसुर और साले ने मेरे साथ खाने से इन्कार कर दिया। यह सब मेरे पापों का ही तो फल था।

मेरी पत्नी और सासु केवल मेरी सेवा करती थीं। वे मेरे लिए खाना और जल लेकर आतीं और अपने हाथों से ही खिला भी देतीं। नियमित रूप से मेरे घावों पर मलहम लगातीं किन्तु मेरे शरीर से इतनी दुर्गन्ध निकलती कि वे भी आवश्यकता होने पर ही मेरे पास आतीं वह भी नाक पर कपड़ा लगाकर।

अन्ततः एक नाई ने मुझे इस रोग से मुक्त किया। उसने जो औषधि दी उसी से मैं नीरोग हुआ। उसके कहे अनुसार लवण रहित खाद्य खाने लगा था। भूजा हुआ चना ही मेरा प्रधान भोजन था। क्रमशः मैं ठीक होने लगा। चार महीने पश्चात् रोग मुक्ति की सम्भावना स्पष्ट होने लगी। इसके दो महीने पश्चात् मैं सम्पूर्णतः स्वस्थ और नीरोग हो गया।

मैंने बार-बार ईश्वर प्रेरित उस नाई को पैसे देना चाहा किन्तु उसने किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं किया। स्वस्थ होने के पश्चात् उसे किसी न किसी रूप में पुरस्कृत करने की ठानी। मैंने उसे बुलवाया, सम्मानित किया। प्रिय बन्धु कहकर अभिहित किया और बहुत उपहार दिए। इस बार उसने उन्हें ग्रहण कर लिया। वह सन्तुष्ट मन से लौटा जानकर मेरा हृदय आनन्द से भर उठा। पूर्ण स्वस्थ होने के पश्चात् मैं दस दिन और

खैराबाद रहा फिर पालकी के द्वारा ही घर लौट गया। मैं अकेला ही घर लौटा कारण मेरे सास-श्वसुर ने पत्नी को मेरे साथ नहीं भेजा था।

घर पहुँचते ही मैंने माता-पिताजी के चरण छुए। मेरी रोगशीर्ण देह देखकर माँ छाती पीट-पीट कर कुरारी पक्षी की भाँति रोने लगी और इस प्रकार चीत्कार करने लगी कि मैं तो अवाक ही रह गया। कुछ प्रतिकार न कर सकने के कारण मैं भी रोने लगा। कुछ दिनों तक मैं कुन्दमना बना रहा फिर पूर्व की ही भाँति समय कटने लगा। मैं पुनः उपाश्रय आने लगा और ज्ञानार्जन एवं प्रेम के व्यसन में पुनः डूब गया।

चार मास पश्चात् मेरे पिता जी पटना गए और मैं खैराबाद ससुराल गया। मैं वहाँ एक महीने रहा किन्तु कुछ देर के लिए भी घर से बाहर नहीं निकला। एक बार भी बाजार तक नहीं गया। मैं लज्जा से इतना अभिभूत था। फिर पत्नी को लेकर जौनपुर लौट आया। रास्ते के लिए मैंने एक पालकी और घोड़ा भाड़े पर लिया था।

जौनपुर आते ही मुझे अपने आत्मीय वयोवृद्धों के सम्मुख आना पड़ा। इन लोगों ने मेरे आचरण की निन्दा की और उपदेश देते हुए बोले—"पुत्र, वृद्ध और अनुभवी व्यक्तियों की बात तुम्हें सुननी चाहिए। प्रेम का व्यसन छोड़ दो। प्रेम तो सूफी-फकीरों के लिए है तुम्हारे लिए नहीं। और ज्ञानार्जन करने का प्रयास कर मूर्ख मत बनो। ज्ञानार्जन तो ब्राह्मण और चारणों का कार्य है। व्यापारी के लड़के को तो व्यापारी ही बनना होगा। मत भूलो अधिक पढ़ने लिखने वालों को भीख माँगकर ही खाना पड़ता है।"

मेरी भलाई किसमें है और किस प्रकार मैं उन लोगों की तरह सोचने लग जाऊँ इसके लिए उनलोगों ने अपने समस्त चुने हुए शस्त्र का मुझ पर प्रयोग किया किन्तु सब व्यर्थ ही गया। मुझ पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं पूर्व की भाँति ही अपने दोनों व्यसनों में व्यस्त रहा। कारण उससे मुझे एक सहज आनन्द मिलता था। मैं जिस प्रकार उपाश्रय जाकर भानचन्द से पढ़ने लगा उसी प्रकार अपनी प्रेमिका से भी मिलता-जुलता रहा। ऐसा सोचना ही भूल है कि मनुष्य को उपदेश देकर सुधारा जा सकता है क्योंकि हम उसी का अनुसरण करते हैं जो हमारे हृदय के भावावेगों से युक्त होता है।

इस प्रकार भाग्याधीन होकर मेरा जीवन व्यतीत होने लगा। कर्म द्वारा प्रेरित होकर १६६० सम्वत् के शेष तक मैं अपने व्यसनों में लिप्त रहा।

१६६० की मुख्य घटनाओं को अब मैं संक्षेप में कहता हूँ। इस वर्ष मेरे पिता जी पटना से जौनपुर लौट आए। जो धन जमीन में गाड़ कर छुपा रखा था उसी से मेरी बड़ी बहन का विवाह किया। मेरी एक लड़की हुई किन्तु वह कुछ ही दिनों में मर गयी। मैं पुनः बीमार पड़ा। मुझे खाना बन्द करने को कहा गया। २० दिनों तक खाना नहीं मिलने के कारण मैं खाने के लिए रो पड़ता। एक दिन तो खाने के लिए इतना छटपटाया कि मैंने कहा—"मुझे खाने को चाहे मत दो किन्तु केवल रोटी मेरी आँखों के सम्मुख रख दो। उससे ही मुझे तृप्ति हो जाएगी।" तब आधा सेर वजन की दो मोटी रोटियाँ बनाकर मुझे दी गईं। मैंने उन्हें तकिए के नीचे छिपाकर रख दी। फिर जब सब चले गए तब उन्हें निकाल कर चुप चाप खा डाली। किन्तु आश्चर्य! उस पथ्य से ही मेरा रोग ठीक हो गया। जिसने भी यह सुना आश्चर्य चकित हो गया।

इसी वर्ष पिताजी ने एक ऐसा सौदा किया जिसमें खतरा अधिक था। इसके लिए वे चिन्तित रहते थे। किन्तु भाग्यवश उन्होने उसी सौदे में सौगुणा लाभ कमाया। अतः घर में आनन्द उत्सव का वातावरण हो गया।

१६५९ में फिर एक लज्जास्पद घटना घटी। १६५९ के श्रावण मास में एक ठग सन्यासी से मेरा मिलना हुआ। उसने मुझे पूरा मूर्ख बना दिया। वह बोला—वह एक ऐसा मन्त्र जानता है जिसे नियमित जपने से प्रचुर धन प्राप्त होता है। अटूट निष्ठा लेकर गोपनीय ढंग से उस मन्त्र का जाप करना होगा और यह बात किसी को भी नहीं बतानी होगी। ऐसा करने पर मैं एक वर्ष बाद प्रतिदिन अपने दरवाजे के सम्मुख एक सुवर्ण मुहर पाऊँगा। मैंने सन्यासी का विश्वास कर लिया। मुझे वह सिद्ध पुरुष-सा लगा। सचमुच ही मुझमें लोभ पैदा हो गया था अतः मैं उसके पैरों पर गिर पड़ा और वह मन्त्र मुझे सिखाने के लिए अनुनय विनय करने लगा। सन्यासी ने वह मन्त्र मुझे सिखा दिया। कहीं भूल न जाऊँ अतः एक कागज के टुकड़े पर लिखकर भी दे दिया। मैंने भी मूर्ख की भाँति पूरे एक वर्ष तक उस मन्त्र का जप किया और भी जो कुछ करने को कहा गया था वह भी किया जरा भी इस विषय में किसी को खबर नहीं लगने दी।

एक वर्ष पश्चात् १६६० में मैं एक विशाल आशा लिए दरवाजे पर गया और प्रतिश्रुत मोहर के लिए चारों ओर देखने लगा किन्तु वह कहीं नहीं मिली। फिर भी आशा का परित्याग नहीं किया। दूसरे दिन भी मैं वहीं गया और मोहर खोजने लगा। जाग्रत अवस्था में तो क्या स्वप्न में भी मुझे मोहर दिखायी नहीं पड़ी। लोभ ही मेरे दुःख का कारण हो गया। स्वयं को एकदम

दीन समझने लगा। आहार में रूचि नहीं रही। अन्ततः समस्त घटना भानचन्द को खोलकर बतलायी। उन्होंने मुझे सान्त्वना दी और बोले—"ऐसा विश्वास कभी नहीं करना चाहिए कारण इससे मन में मिथ्या आशा जागृत हो जाती है।" मेरे मन की शान्ति और भूख लौटाने में उन्होंने मेरी सहायता की।

इसके कुछ दिनों पश्चात् एक और योगी मुझे बेवकूफ बना गया। उसने मुझे एक छोटा शंख और देवपूजा के अनुसांगिक द्रव्य देकर बोला—"यह शंख महादेव का प्रतिरुप है। जो इसकी नित्य पूजा करेगा वह शिवपुरी पाएगा।" मैंने वह शंख ले लिया और श्रद्धा भक्ति से निर्दिष्ट विधि के अनुसार उसकी पूजा करने लगा। प्रतिदिन पूजा करने के पूर्व मैं स्नान करता और पूजा के समय १०८ बार शिव-शिव उच्चारण करता। उस समय मैं अत्यंत उल्लास और आनन्द अनुभूति करता। पूजा पूर्ण हुए बिना कुछ नहीं खाता। यदि किसी दिन कोई कारणवश पूजा नहीं कर पाता तो स्वयं को अपराधी महसूस करता। इसके प्रायश्चित स्वरुप दूसरे दिन मैं नीरस आहार ग्रहण करता। इस प्रकार बहुत दिनों तक मैंने शिव पूजा की। किन्तु यह बात बन्धु-बान्धव किसी को भी मालूम नहीं होने दी।

१६६१ में चैत्र शुक्ला द्वितीया के दिन ओसवाल गोत्रीय हीरानन्द जैन प्रयाग से सम्मेत शिखर तीर्थ की यात्रा करने गए। वे धनी और प्रभावशाली जौहरी एवं जहाँगीर के मुकीम थे। इस तीर्थयात्रा में अनेक स्वधर्मी भाई उनके साथ गए। उन्होंने जौनपुर के निकट गंगा अतिक्रम कर शहर के निकट तम्बू डाले। हीरानन्द जी ने उस अंचल के सभी जैनियों को अपने साथ तीर्थयात्रा पर चलने के लिए आमंत्रित किया। मेरे पिता जी को भी वह आमन्त्रण मिला। वे घोड़े पर चढ़कर हीरानन्द जी के संघ में सम्मिलित होने के लिए रवाना हो गए।

वे अकेले ही गए। हममें से किसी को भी साथ नहीं लिया। उनके जाने के पश्चात् मुझ पर किसी का अंकुश नहीं रहा। मैं हठी और दुर्विनीत तो था ही अतः तीर्थयात्रा जाना स्थिर कर माँ को बार-बार उत्पीड़ित करने लगा। बालोचित धर्म भावना से जिस प्रकार लोग उद्देश्य की सिद्धि नहीं होने तक दूध, दही, घी, तेल, पान इत्यादि में कोई एक वस्तु या एक से अधिक वस्तु छोड़ देते हैं उसी प्रकार मैंने भी कुछ द्रव्यों का परित्याग कर दिया।

मैंने चैत्र मास में यह प्रतिज्ञा की थी। इसके छः मास पश्चात् ही थी

कार्त्तिक पूर्णिमा। कार्तिक पूर्णिमा पर भी लोग तीर्थ यात्रा पर जाते हैं। शिव उपासक गंगा स्नान के लिए और जैनी पार्श्वनाथ की उपासना के लिए वाराणसी जाते। कार्त्तिक पूर्णिमा आने पर मैं भी यात्रियों के साथ बनारस गया और गंगा में स्नान किया। फिर भक्ति पुलकित मन से पार्श्वनाथ भगवान की पूजा के लिए शहर में गया। मन्दिर जाते समय बाजार से वही सब द्रव्य खरीदे जिन्हें खाना मैंने छोड़ दिया था। मन्दिर में भगवान के सम्मुख वे सब चीजें चढ़ायीं। मैं दस दिन बनारस रहा। उन दस दिनों में प्रतिदिन सुबह मन्दिर जाकर पूजा करता।

इस प्रकार कुछ दिनों के लिए मैं भगवान पार्श्वनाथ का भक्त हो उठा। किन्तु यात्रा के समय और वाराणसी में भी मैं शंख की पूजा करना नहीं भूलता। शंख की पूजा किए बिना मैं अन्न ग्रहण नहीं करता। जब मेरी यात्रा समाप्त हुई तब उस शंख को भी अपने साथ ही जौनपुर ले आया। वह शिव का प्रतीक शंख जिस प्रकार निःसार था मैं भी उसी प्रकार निःसार था। उस समय भक्त और भगवान एक रूप ही थे।

पिता जी जिस समय तीर्थ यात्रा पर थे मेरे एक भाई का जन्म हुआ था किन्तु वह अधिक दिन जीवित नहीं रहा अतः उसके विषय में कुछ कहना निरर्थक है।

१६६१ में तीर्थ-यात्रियों का एक दल जो कि पहले सम्मेत शिखर पहुँचा था लौट आया। लौटते समय उनकी यात्रा सुखकर नहीं रही। राह में रोगाक्रान्त होकर अनेक मर गए, अनेक भयंकर रूप में अस्वस्थ हो गए। मेरे पिता जी जब पटना आए तब उदर रोग से पीड़ित होकर शय्याशायी बन गए। उनका आयुष्य था अतः धीरे-धीरे वे स्वस्थ हो गए। वे पटना में हीरानन्द जी और मूल संघ के आने की अपेक्षा करते रहे। जब वे लोग आए तब उनके साथ जौनपुर आए। उनकी यह यात्रा भी बड़ी कष्टकर रही। घर लौटते ही उन्होंने पुनः खाट पकड़ ली।

[क्रमशः

संस्कृत का एक पद्यबद्ध सत्रहवीं शताब्दी का कोश

सिद्ध शब्दार्णव

श्री अगर चंद नाहटा

जैन विद्वानों की संस्कृत, व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार आदि सभी विषयों की रचनाएँ बहुत बड़ी संख्या में उच्च स्तर की प्राप्त होती है। इनमें से कोशों के सम्बन्ध में 'तित्थयर' पत्रिका में जैन कोश साहित्य प्रकाशित हुआ है। उसमें सत्रहवीं शताब्दी के पद्य-बद्ध संस्कृत जैन कोष का उल्लेख नहीं हुआ है जबकि वह अपूर्ण रूप से प्रकाशित भी हो चुका है। पर विद्वानों को उसकी जानकारी न होने से प्रस्तुत लेख में उसका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

इस पद्य-बद्ध शब्द कोश का नाम है 'सिद्ध शब्दार्णव'। इसके रचयिता है उपाध्याय सहज कीर्त्ति गणि। ये १७ वीं शताब्दी के बहुत बड़े विद्वान थे। सिद्ध शब्दार्णव छः काण्डों में है, पर इसके सम्पादक श्री मुरलीधर गजानन पानसे को इसकी जो हस्तलिखित प्रति मिली थी, वह अपूर्ण थी। उसमें प्रथम काण्ड के ३५१, द्वितीय काण्डके ४४६ श्लोक तक का अंश ही प्रकाशित हुआ है पर अब इसकी पूरी प्रति हरिसागर सूरि ज्ञान भण्डार, पालिताना में प्राप्त हुआ है। इस से मूल ग्रन्थ छः काण्डों का विदित होता है पर उसमें प्रकाशित ग्रन्थ में जो टिप्पणियाँ है, वे नहीं है। अतः संस्कृत शब्दों के जो प्रसिद्ध पर्यायवाची और राजस्थानी शब्द प्रकाशित संस्मरण में टिप्पणियाँ रूप में छपे हैं जो संख्या में ६२१ व ८०० है बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अन्त में सम्पादक ने प्राप्त शब्दों का अकारादि क्रम से शब्द कोश तथा अंग्रेजी में शब्दकोश दे दिया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। मूल ग्रन्थ के प्रारम्भ में अंग्रेजी में ३६ पृष्ठों की भूमिका है। डेक्कन पूना से १९६५ में यह कोश प्रकाशित हुआ है। यद्यपि पूरी प्रति प्राप्त करने के लिए सम्पादक ने काफी श्रम किया है पर उस समय पूर्ण प्राप्त नहीं होने की वजह से यह अपूर्ण छपा है। अब जब इसका दूसरा संस्करण पूर्ण रूप से प्रकाशित होगा तब ग्रन्थ की महत्ता और उपयोगिता बहुत बढ़ जाएगी।

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ॥ अक्टूबर १९८२

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'बन्धन और मुक्ति' (डा० सागरमल जैन), 'धर्म के तीन सूत्र' (कलावती जैन)।

कुशल निर्देश ॥ अक्टूबर १९८२

इस अंक में है 'श्री सहजानन्द जी महाराज के मुनिश्री आनंदघन विजय जी को दिये पत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'मुहुर्त्त कभी पूर्ण निर्दोष होते ही नहीं' (भीखमचन्द मुणोत), 'कल्याण मन्दिर स्तोत्र के रचयिता कौन और कब हुए ?' (अगरचन्द नाहटा)।

जर्नल अव दि आरियन्टल इन्स्टीट्युट ॥ मार्च १९८२

इस अंक में है 'Subhatilaka—A Commentary on Gayatri Mantra' (Satyavrat), 'Minor Jaina Deities' (Umakant P. Shah)।

जैन जर्नल ॥ अक्टूबर १९८२

इस अंक में है 'The Jaina Contribution to the History of Ancient India' (Prem Chand Jain), 'Anekantavada in the Light of Some Other Modern Views' (Gour Hazra), 'Udayi' (Ganesh Lalwani), 'Vatarasana Munis and Nirgrantha Dharma' (J. C. Sikdar), 'Great women in Jainism'.

तीर्थंकर ॥ अक्टूबर १९८२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'दुःख की भी अपनी गरिमा' (डा० कुन्तल गोयल), 'प्रश्न बहुत सारे/हम थके हारे' (डा० सागरमल जैन), 'सामाजिक चेतना : पुनरूत्थान की प्रतीक्षा' (डा० नरेन्द्र कुमार सेठी), 'समाधि मरण : मरण की मांगलिक अगवानी—बातचीत १' (एलाचार्य मुनि विद्यानन्द/डा० नेमीचन्द जैन), 'इतिहास लिखें सांस्कृतिक, राजनैतिक—बातचीत २' (साहू श्रेयांस प्रसाद जैन/डा० नेमीचन्द जैन), 'छोटे-छोटे विवादों/मतभेदों से ऊपर उठें—बातचीत ३' (लक्ष्मीचन्द्र जैन/डा० नेमीचन्द जैन), 'अनेकान्त :

तीसरे नेत्र की खोज' (मुनिश्री नथमल), 'समनसुत्त चयनिका' (डा० कमलचन्द सोगानी), 'अन्तिम पृष्ठ : चिन्तन के रूप में खत (२-३)' (गणेश ललवानी)।

तुलसी प्रज्ञा ॥ जुलाई-सितम्बर, १९८२

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन दर्शन का हार्द' (सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्र शास्त्री), 'अनेकान्तवाद' (मुनिश्री मोहन लाल), 'जिनकल्प' (साध्वी श्री सिद्धप्रज्ञा), 'कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र' (मांगीलाल मिश्र), 'जैन दर्शन में नय दृष्टि' (अशोक कुमार जैन), 'संस्कृत जैन स्तोत्र साहित्य : एक विवेचन' (कपूरचन्द जैन), 'जैन एवं बौद्ध भिक्षुणियों का शिक्षा में योगदान' (अरुण प्रताप सिंह), 'आयुर्वेद में अनेकान्त की उपादेयता' (राजकुमार जैन), 'आयारो : हिन्दी पद्यानुवाद' (मुनि मांगीलाल), 'The Jaina Concept of Language & Reality' (Dr. Jagat Pal), 'Jainism and Destiny of Man' (Dr. V. P. Jain), 'Early Mediaeval Architecture as Depicted in Dhanapala's Tilakamanjari' (Dr. G. P. Yadava), 'Glimpses of Early Jain Monachism' (Rekha Chaturvedi), 'Jaina Technical Terms' (Dr. Mohanlal Mehta).

श्रमण ॥ अक्टूबर १९८२

इस अंक में है 'श्रमण संस्कृति की पृष्ठभूमि' (उर्मिला जैन), 'जैन दर्शन के अन्तर्गत जीवतत्व का स्वरूप' (विनोद कुमार तिवारी), 'संयुक्त निकाय में जैन संदर्भ' (विजय कुमार जैन)।

Vol. VI No. 7 : Titthayara : November 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001